IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

बुद्ध के प्रमुख दार्षनिक सिद्धन्त में ईष्वरवाद कि अवधारण

षोध–पत्र

दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विष्वविद्यालय गोरखपुर

(कला संकाय–प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग)

प्रस्तुतकर्ता :

इन्द्रजीत सिंह

षोध छात्र

पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग

मदन मोहन मालवीय पी0जी0 कालेज

भाँटपार रानी, देवरिया, (उ0प्र0)

बुद्ध के प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्त में ईश्वर वाद की अवधारणा

सारांश

महात्मा बुद्ध जीव और जगत के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते थे। उनके विभिन्न प्रवचनो और उपदेशो मे उनके जीवन दर्शन के स्पष्ट झलक मिलती है वह जटिल से जटिल घटनाओ तथा दुरूह से दूरूह विषय को सरल और सुबोध रूप मे व्याख्यायित करना । उन्होने जीवन और जगत को स्वीकार किया तथा वह इस समस्या मे अपने को नही डाला की मनुष्य अमर है या नश्वर ससीम है या असीम जीव और शरीर एक है या अलग मृत्यु के बाद बना रहता है अथवा उसके साथ नष्ट हो जाता है अतः उनका धर्म था मोक्ष के मार्ग का निर्देशन करना। उनके धर्म का लक्ष्य था मनुष्य को सांसारिक वेदना और कष्ट से मुक्त करना। वे ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान का आलोक उत्पन्न करना चाहते थे जिससे स्पृहा और वासना का विनास हो। वे सार्वभौमिक उत्थान मे विश्वास रखते थे इसलिये समस्त मानव जाति को सत्य के निकट लाना चाहते थे।बुद्ध सील और आचार के समर्थक थे तथा यह मानते थे कि इसके बिना मनुष्य का जीवन सार्थक नही है। त्याग और संयम के जीवन की वे सराहना करते थे। निवृत्ति और ब्रम्हचर्य के अनुपालन के वे देशना देते थे। अच्छे बुरे कि पहचान से कार्यशील होना तथा नीर

क्षीर –विवेकी होना वे मानव का सबसे बडा धर्म मानते थे क्या ठीक है, क्या ठीक नही है,इनका विचार करना चिन्तन मनन करना तथा अपने किसी कार्य या व्यवहार से दूसरे को पीडा पहुचाना ,इसको सोचना उन्होने मनुष्य के लिये अनिवार्य माना है। जिस कार्य से सब सुखी है वह वही ठीक कर्म है तथा जिसमे से अपने को और दूसरे को दुःख और आघात पहुँचता है , वह कर्म नही है। बुद्ध के जीवन दर्शन मे सामाजिकता की महत्ता थी। वे जाति–पाति के प्रबल विरोधी थे। कर्म के अधार पर ही वे मनुष्य को छोटा या बडा मानते थे दास्ता से उन्होने घृणा की। स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता के वे पोषक थे। कर्म और क्रिया शीलता का का उन्होने प्रतिपादन किया था तथा प्रत्योक व्यक्ति को अपना अपना कार्य करने के लिये उनहेने निर्देशीत किया था।

प्रतीत्यसमुत्पाद– प्रतीत्य समुत्पाद बौद्ध दर्शन की आधारशिला है। प्रतीत्यसमुत्पाद का सामान्य अर्थ है– कार्य–कारण सिद्धान्त। अर्थात यह होने से (प्रतीत्य) ऐसा होता है (समुत्पाद)। अर्थात एक वस्तु की प्राप्ति होने पर दूसरे की उत्पत्ति होती है। इस प्राकर यह 'सापेक्ष कारणतावाद' है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जन्म ही जरा–मरण का कारण है। अर्थात संसार की समस्त वस्तुएँ या समस्त प्राणिमात्र जन्म के कारण या उत्पन्न होने क कारण नाशवान् या दुःख के अधीन है। और इस कारण के अभाव में ही उन्हें पुनर्जन्म तथा तद्जनित दुःख से निवृत्ति मिल सकती है। बुद्ध ने स्पष्ट कहा ''इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है। इसके न होने पर यह नहीं होता, इसका निरोध होने पर निरोध होता है।'' प्रतीत्यसमुत्पाद में द्वादश अंग है– (1) अविद्या, (2) संस्कार, (3) विज्ञान, (4) नामरूप, (5) षडायतन (6) स्पर्श, (7) वेदना, (8) तृष्णा, (9) उपादान (10) भव, (11) जाति तथा (12) जरा–मरण। ये क्रमशः एक–दूसरे के कारण बनते है। जैसे अविद्या से संस्कार, संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नामरूप, नामरूप से षडायतन, से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जाति, जाति से जरा–मरण। इन द्वादशांगों का सम्बन्ध वर्तमान से ही नहीं, प्रत्युत अतीत तथा भावी तीनें जन्मों से से है। इन द्वाद्वशांगो का सम्बन्ध वर्तमान से ही नहीं, प्रत्युत अतीत तथा भावी तीनों जन्मों से है। इसीलिये इसे त्रिकाण्डात्मक भी कहा गया है। इसमें अविद्या एंव संस्कार अतीत जीवन, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान तथा भव वर्तमान जीवन तथा जाति, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान तथा भव वर्तमान जीवन तथा जाति एवसं जरा–मरण भावी जीवन के कारण हैं। अविद्या से आशय चार आर्य सत्यों के अज्ञान या पूर्व जन्म के मोह आदि से वशीभूत दशा से है। संस्कार अविद्या जनित भले–बुरे कर्मो का संस्कार है। विज्ञान प्रत्युत्पन्न जीवन की वह अवस्था है जब प्राणी गर्भस्थ होकर चेतना प्राप्त करता है तो नाम रूप का अर्थ है जीवन में मन और शरीर का विकास। षडायतन उस अवस्था का द्योतक है, जब सत्व माता के उदर से बाहर आता है तथा उसकी बाह्म इन्द्रियाँ–आँख, कान, नाक, जिह्वा, स्पर्श, तथा मन–पूर्णतया तैयार हो जाती है, पर वह अभी तक उन्हें प्रयुक्त नहीं कर पाता। इन्द्रिय तथा विषय के सन्निपात को स्पर्श कहते हैं।

वेदना का अर्थ है– अनुभव करना। इन्द्रिय तथा विषय के संयोग से मन पर जो प्रथम प्रभाव होता है, उसी का नाम वेदना है। षडविषयों के प्रति प्यास का होना तृष्णा है। यह तीन प्रकार की होती है, उसी का नाम वेदना है। षडविषयों के प्रति प्यास का होना तृष्णा है। यह तीन प्रकार की होती है–काम, तृष्णा, तथा विभव–तृष्णा। विषयों को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करना उपादान है।

भव का अर्थ है– जन्म की इच्छा, जिसके वश पुनरूत्पति होती है। उत्पन्न होना जाति है। जीर्ण होना जरा तथा मृत्यु मरण है। द्वादशांगों के इसी क्रम से भवचक्र चल रहा है। बुद्ध का अभिमत था कि जरा–मरण आदि की श्रृंखला को तोड़ने के लिए जन्म की श्रृंखला को तोड़ना तथा भव के प्रत्ययों को हटाना आवश्यक है। इसकी आदि जननी अविद्या है, जिसके कारण सत्व दुष्कर्मो में प्रवृत्त होता है तथा पूर्व संचित संस्कारों के कारण विषयभोग में लिप्त होना पड़ता है। यदि कारण रोक दिया जाय तो कार्य की श्रृंखला रूक जायेगी।

ईश्वर नहीं ? बुद्ध ने स्वीकार किया कि कार्य–कारण के सिद्धान्त पर सृष्टि तथा उसका विनाश स्वतः होता रहता है। इसके लिये किसी ईश्वर या कर्ता की आवश्यकता नहीं है। यदि ईश्वर को सृष्टि का कर्ता माना जाय तो उसे दुःख कर्ता भी मानना पड़ेगा । पर कोई सृष्टिकर्ता ऐसा क्यों चाहेगा ? कुछ लोग बुद्ध को अनीश्वरवादी नहीं मानते । उनका तर्क है कि नितान्त कर्मवादी होने के कारण ही इन्होंने ईश्वर विषयक प्रश्नों की चर्चा नहीं की और इस पर ये मौन रह गये। यदि ईश्वर को परम तत्व के रूप में स्वीकार किया जाय तो चार्वाक को छोड़कर कोइ भी भारतीय दर्शन अनीश्वरवादी नहीं माना जा सकता। बौद्ध धर्म में परम तत्व की सत्ता स्वीकार की गयी है।

आत्मा का अस्तित्व नहीं है ? ईश्वर की ही भाँति आत्मा के अस्तित्व के विषय में भी बुद्ध मौन रहे। अर्थात इन्होंने न तो यह कहा कि आत्मा है, न यही कि आत्मा नहीं है। इन्होंने स्वीकार किया कि मनुष्य का शरीर कई संस्कारों का संधान है। जैसे शकट कई पुर्जो के जुड़ने से बनती है वैसे मनुष्य भी। जैसे शकट के पुर्जो को अलग कर देने से उसके भीतर कोई स्थायी तत्व नहीं मिलता वैसे शरीर के तत्वों के अलग हो जाने पर आत्मा नाम का कोई तत्व नहीं पाया जाता। महावग्ग में पंचवर्गीय भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुये इन्होंने स्पष्ट कहाकि ''भिक्षुओं ! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान में सभी यदि आत्मरूप होते तो इनमें रोग न होता और न हम कह सकते कि यह मेरा रूप है, संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान है। और मेरे रूप, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान और वेदना ऐसे हो, ऐसेन हों, किन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि वे सभी अनित्य, दुःख और विपरिणाम धर्मी हैं। उनमें यह समझना कि 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, मेरी आत्मा है,' भ्रम है। **राधा कृष्णन** के अनुसार बुद्ध ने अपने अनुयायियों से आत्मदीप होकर विहार करने, आत्मशरण या अनन्यशरण होने की बात कही है जिससे पता चलता है कि वे आत्मा में विश्वास करते थे। पर ऐसा लगता है कि इस प्रसंग में बुद्ध ने आत्मा का प्रयोग 'अपने अर्थ में किया है। अतः बुद्ध को इस आधार पर आत्मवादी मानना ठीक न होगा।

मनुष्य कर्मानुसार फल भोगता है तथा जन्म लेता है– बुद्ध कर्मफल में विश्वास करते थे। इनका विचार था कि मनुष्य अपने कर्मो के अनुसार अच्छा बुरा जन्म प्राप्त करता है। उसकी समस्त कायिक, मानसिक तथा वाचिक क्रियायें कर्म से सम्बद्ध है। वही मनुष्य के सुख, दुःख का निर्धारक है। इन्होंने बताया कि मनुष्य, ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र जो भी सम्यक कर्म करेगा वही मोक्ष का अधिकारी होगा। निम्न कुल का मनुष्य धृतिमान, ज्ञानवान एवं पापरहित मुनि होता है। यही कर्मफल मनुष्य के भावी जन्म का निर्धारण करता है। पुनर्जन्म की स्पष्ट व्याख्या मिलिन्दपञ्हो में नागसेन ने की है। जिस प्रकार जल प्रवाह में एक लहर के बाद दूसरी आती रहती है और यह सक्रम चलता रहता है तथा कोई व्यवधान नहीं होता, उसी प्रकार एक जन्म की अन्तिम चेतना के समाप्त होते ही दूसरे जन्म की प्रथम चेतना का उदय हो जाता है। यह परिवर्तन इस प्रकार होता है, कि विलय तथा चेतना के बीच तनिक भी अन्तराल नहीं पड़ता।

संसार अनित्य है– परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए बुद्ध ने अनित्यवाद का प्रतिपादन किया। इन्होंने कहा कि संसार की समस्त वस्तुयें अनित्य है अर्थात परिवर्तनशील है। बुद्ध के अनित्यवाद को इनके अनुयायियों ने आगे बढ़ाकर क्षणिकवाद में परिवर्तित किया था। इसके अनुसार विश्व की प्रत्येक वस्तु अनित्य ही नहीं, प्रत्युत क्षणभंगुर भी है। जैसे नदी की एक बूँद एक क्षण के लिये सामने आती है और दूसरे क्षण यह विलीन हो जाती है, उसी प्रकार जगत की समस्त वस्तुयें भी एक क्षण के लिये सामने आती है। बुद्ध के क्षणिकवाद को आधुनिक काल में फ्रेंच दार्शनिक वर्गसाँ ने स्वीकार किया है, जिसके अनुसार संसार की सभी वस्तुयें परिवर्तनशील हैं।

परमात्मा विषयक विचार व्यर्थ है– बुद्ध नितान्त प्रयोजनवादी थे। ईश्वर के विषय में विचार न कर इन्होंने मनुष्य के विषय में विचार किया और केवल उन्हीं विषयों का उपदेश दिया जो मनुष्य के लिये कल्याणकर थे। लोक, जीव तथा परमात्मा–विषयक विचार इनकी दृष्टि में व्यर्थ थे। इन्होंने (1) क्या लोक नित्य ह, (2) क्या लोक अनित्य है, (3) क्या लोक शान्त है, (4) क्या लोक अनन्त है, (5) क्या जीव और शरीर एक है (6) क्या जीव और शरीर भिन्न–भिन्न है, (7) क्या मुत्यु के पश्चात् तथागत होते है। (8) क्या मृत्यु के बाद तथागत नहीं होते है, (9) क्या मृत्यु के बाद तथागत होते भी है और नहीं भी होते तथा (10) क्या मृत्यु के बाद न तथागत होते ही है, न नहीं ही होते, जैसे दश विषयों पर मौन रहने की परामर्श दी थी। इस प्रकार इन्होंने विशुद्ध व्यवहार का प्रवर्तन किया।

मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण– मनुष्य का एक मात्र लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है। सामान्यतः इसका तात्पर्य जन्म मरण से मुक्ति से लिया जाता है। अर्थात् यह मृत्युपरान्त मिलता है। पर बुद्ध की दृष्टि से निर्वाण प्राप्ति का आशय परम ज्ञान की प्राप्ति से था। अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण कर मनुष्य मानसिक एवं बौद्धिक विमुक्ति प्राप्त कर सकता है और परम सत्य (ज्ञान) की अनुभूति कर सकता है। यही निर्वाण है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि बौद्धों ने भी वैदिक हिन्दुओं, जैनों और अपने देश के अन्य सभी धर्मावलम्बियों की समान संसार और कर्म में विश्वास किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ विमल चन्द्र पाण्डे– प्राचीन भारत का इतिहास

2. रमेश चन्द्र मजुनदार – भारत का वृहत इतिहास प्राचीन भारत का इतिहास

3. हेम चन्द्र राय चौधुरी– भारत का वृहत इतिहास प्राचीन भारत का इतिहास

4. कालिंकिंकर दत्त– भारत का वृहत इतिहास प्राचीन भारत का इतिहास

5. डॉ0 जयशंकर मिश्र– प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास

6. डॉ0 द्विजेन्द्र नारायण झा– प्राचीन भारत का इतिहास

7. कृष्ण मोहन श्री माली– प्राचीन भारत का इतिहास